हमारी बात

क्या शहर सुरक्षित है?

पिछले कई महीनों से सुर्खियों में कुछ ऐसे मामले रहे हैं जो शहरों में औरतों की सुरक्षा को लेकर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। इनमें मुंबई के होटल के बाहर पुरुषों के एक गुट द्वारा दो महिलाओं के साथ यौन हिंसा की वारदात शामिल है। एक दूसरा किस्सा दिल्ली विश्वविद्यालय के साइबर कैफे में दो छात्राओं के उत्पीड़न का है। एक महीने की अवधि के अन्दर हमने गुड़गांव मॉल के बेसमेंट में एक महिला के साथ यौन हिंसा, उदयपुर के होटल मालिक द्वारा अंग्रेज़ महिला पत्रकार के साथ बदसलूकी और कोची में सैलानियों पर भीड़ द्वारा हमले के किस्से भी सुने हैं। ये सभी मामले सार्वजनिक स्थलों पर महिलाओं पर हिंसा की सच्चाई से हमें रूबरू कराते हैं।

हालांकि अखबारों में हिंसा के दिल दहला देने वाले किस्से रोज़ाना पढ़ने को मिलते हैं पर महिला हिंसा को परिभाषित करने वाला मुख्य तथ्य है- हिंसा का सतत व आम-साधारण स्वरूप। हिंसा के इस 'आम-रोज़मर्रा' के 'नॉर्मल' चरित्र पर ही हमें अपना ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है। रोज़मर्रा के जीवन में होने वाली हिंसा की धारणा औरतों के दैनिक जीवन व अनुभव को नियंत्रित करने के तरीकों पर केंद्रित होती है। समाज में औरतें एक कमज़ोर समूह के रूप में देखी जाती हैं जहां पितृसत्तात्मक हिंसा का इस्तेमाल उन्हें नियंत्रित, दरकिनार व हक़ों से महरूम रखने के लिए किया जाता है। औरतों के लिए केवल शारीरिक हिंसा ही नहीं, बल्कि खासतौर पर यौन हिंसा का डर भी सर्वोपरि होता है। यह डर औरतों के मन में अपने शरीर को लेकर पितृसत्तात्मक सोच से जुड़ा है जहां परिवारों के लिए औरतों की इज़्ज़त और शर्म खो जाने का डर भी शारीरिक हिंसा का शिकार होने के बराबर ही माना जाता है।

हालांकि इस सच को स्वीकार कर लिया गया है कि सार्वजनिक स्थलों में महिलाओं पर हिंसा विश्वव्यापी है पर इसे कैसे सम्बोधित करना है इस पर विचार अभी हाल ही में शुरू हुआ है। इसके लिए आवश्यक है कि हिंसा को सतत बनाने वाले कारणों को पहचाना जाये। इस लेख में प्रस्तुत हमारे विचार जागोरी की शोध पर आधारित हैं जिसमें सार्वजनिक स्थानों को असुरक्षित बनाने तथा हिंसा व हिंसा के डर से शहरी सार्वजनिक जीवन में पूर्ण भागीदारी के हक़ से महिलाओं को वंचित करने वाले कारणों की समीक्षा की गई थी। इस शोध अध्ययन के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया में 'सेफ़्टी ऑडिट' या सुरक्षा जांच शामिल है जिसमें किसी जगह को सुरक्षित व असुरक्षित बनाने वाले कारणों को आंका जाता है। इस जांच में जगह के माहौल, भौतिक ढांचे (रोशनी, पेड़, पारपथ, पार्क आदि), पुलिस व टेलिफोन बूथ, दुकानदारों की मौजूदगी आदि बातें परखी जाती हैं जिससे पुरुष केंद्रित व औरतों के लिए उपयुक्त जगहों को पहचाना जा सके। जागोरी ने तकरीबन छः सौ महिलाओं का साक्षात्कार भी किया जिसमें अलग-अलग वर्ग, उम्र व जगहों से आने वाली औरतें शामिल की गईं, जिससे औरतों के नज़रिये से उनके हक़ व इन जगहों तक उनकी पहुंच की समझ बनाई जा सके। शोध में शहर के अलग-अलग स्थान जैसे मध्यमवर्गीय रिहाइशी कॉलोनी, पुनर्वास बस्ती, बाज़ार, मेट्रो स्टेशन, व्यवसायिक क्षेत्र, शैक्षिक कैम्पस, रेलवे स्टेशन व औद्योगिक क्षेत्र शामिल किए गये थे।

शोध से यह पता चला कि शहर की अधिकांश महिलाओं को हिंसा की संभावना का डर सताता है। पर इस डर का अनुभव उनके रहने व काम की जगह व यातायात पर निर्भर होता है। हम इस बात को भी स्वीकारते हैं कि शहरी स्थलों में सिर्फ़ लैंगिक भेदभाव ही नहीं होता। इसके साथ-साथ उम्र, सामाजिक वर्ग, रोज़गार, वैवाहिक दर्जा, विकलांगता आदि अन्य पहचानें भी भेदभाव का कारण बनती हैं।

बसों में सफर करने वाली औरतों के अनुभव कार में चलने वालों से अलग होते हैं। इसी तरह बस्ती या पुनर्वास क्षेत्र में रहने वाली व मध्यमवर्गीय रिहायशी इलाकों की औरतों के सामने अलग-अलग चुनौतियां होती हैं। मध्यमवर्गीय इलाके में रहने वाली औरतों तथा सेवाएं प्रदान करने वाली कामकाजी महिलाओं के भी सुरक्षा से जुड़े सरोकार भिन्न होते हैं।

शोध ने इस बात को उजागर किया है कि औरतें अक्सर खुद को तथा समाज उन्हें सार्वजनिक स्थलों के अवैध उपयोगकर्त्ता के रूप में देखता है। यहां तक कि जब औरतें सड़क पर किसी 'वैध' कारण से दिखाई देती हैं जैसे काम पर जाने के समय तब भी वे अपनी नज़रें नीची रखती हैं या फिर पुरुषों को निकलने-चलने के लिए जगह देती रहती हैं। यह व्यवहार इस सोच का प्रतीक है कि सार्वजनिक क्षेत्र पर तुलनात्मक रूप से पुरुषों का औरतों से ज़्यादा हक़ होता है। लंदन व जेरूसलेम में सार्वजनिक जगहों के उपयोग पर की गई एक तुलनात्मक शोध में यह पाया गया कि दोनों शहरों की औरतों के मन में हिंसा का खौफ़ उनके वैवाहिक दर्जे, राष्ट्रीयता और यौन झुकाव के दायरों के बाहर एक समान था।

सार्वजनिक जगहों पर औरतों की मौजूदगी व पहुंच समय, जगह व वजह जैसे कारणों पर निर्भर करती है। बिना बंदिश व रोक-टोक के सार्वजनिक स्थलों के उपयोग के लिए औरतों के पास 'जायज़' कारण होने चाहिए। यानी बच्चों को छोड़ना-लाना, पढ़ने या नौकरी पर जाना, पार्क में चलना (उचित समय पर) या खरीददारी करना (कुछ विशेष समय पर) आदि वैध कारण माने जाते हैं। इस वैधता का अर्थ यह नहीं कि इस समय हिंसा नहीं की जा सकती पर ये वजहें उन्हें 'शरीफ़' और 'इज़्ज़तदार' औरतों की श्रेणी में स्थान ज़रूर दिला देती हैं। यानी काफी ऐसी जगहें हो सकती हैं जिन्हें महिलाएं दिन में तो उपयोग कर पाती हैं, परन्तु रात को वे उनकी पहुंच और मौजूदगी के लिए उपयुक्त नहीं समझी जातीं। औरतों से अपनी आवाजाही के लिए समय और जगह की उपयुक्तता पर ध्यान देने की अपेक्षा की जाती है।

औरतें हिंसा से किस प्रकार निपटती हैं या उसे कैसे लेती हैं यह "सम्मान" की विचारधारा के दायरे पर निर्भर करता है। अधिकतर समय महिलाएं हिंसा की रपट पुलिस में दर्ज नहीं करातीं क्योंकि उन्हें सार्वजनिक स्थल पर मौजूद होने के 'जायज़' कारण पेश करने पड़ते हैं। युवा लड़कियां अक्सर अपने माता-पिता से उत्पीड़न का ज़िक्र नहीं करतीं क्योंकि ऐसा करने से उनकी आवाजाही पर रोक लगाई जा सकती है। औरतें ज़्यादातर ऐसे फ़ैसले करती हैं जिनमें यह समझ निहित होती है कि उनके पास सार्वजनिक स्थल पर होने की कोई जायज़ वजह है।

कॉलेज में पढ़ने वाली एक युवा लड़की बताती है, "मैं बस या ऑटो का इंतज़ार करते समय हमेशा बस स्टॉप पर ही खड़ी होती हूं। कहीं और खड़े होने पर आती-जाती कारें सामने आकर धीमी रफ़्तार में रुकने का उपक्रम करती हैं। बस स्टॉप पर कम से कम मैं आराम से रुककर इंतज़ार तो कर सकती हूं।"

गाड़ियों का सामने आकर धीमी गति से चलना इस बात का संकेत होता है कि महिला को यौन प्रस्ताव या घूमने-फिरने के लिए आमंत्रित किया जा रहा है। इसलिए बस स्टॉप पर खड़ी होकर औरत इस बात का प्रमाण देती हैं कि वह एक 'अच्छी औरत' है जिसके सार्वजनिक स्थल पर मौजूद होने के पीछे एक जायज़ मकसद है। हमारे सर्वेक्षण से यह पता चलता है कि बस स्टॉप पर भी औरतें छेड़खानी और बदसुलूकी का शिकार होती हैं, हालांकि यह अन्य जगहों से अधिक सुरक्षित माने जाते हैं।

हमारे सामने ऐसे कई मामले हैं जो दर्शाते हैं कि किसी "गलत समय" या "स्थल" पर औरत की मौजूदगी किस प्रकार हिंसा का कारण बन जाती है- तड़के सुबह खेत में जा रही एक युवा लड़की के साथ बलात्कार इसलिए किया गया क्योंकि अभी अंधेरा था और दिन पूरी तरह चढ़ा नहीं था। एक दूसरी महिला का बलात्कार रात के समय गाड़ी निकालते समय पार्किंग में किया गया था।

इन घटनाओं पर सार्वजनिक प्रतिक्रिया बौखलाहट के साथ-साथ सुरक्षा का ज़िम्मा वापस महिला पर डाल देने की होती है। उदाहरण के लिए सन् 2004 में दिल्ली पुलिस ने पाबंदियों और मनाहियों की फेहरिस्त जारी की थी जिसमें अंधेरा होने पर अकेले बाहर निकलने, अजनबियों से बातचीत करने, सुनसान इलाकों में न घूमने इत्यादि जैसी हिदायतें शामिल थीं। हाल ही में दिल्ली पुलिस ने पूर्वोत्तर क्षेत्र की महिलाओं को सुझाव दिये कि वे किस प्रकार यौन हिंसा से बच सकती हैं। इन सुझावों में कपड़े व व्यवहार संबंधी हिदायतें भी शामिल हैं।

शहरों को महिलाओं के लिये सुरक्षित बनाओ

औरतों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी सुरक्षा की ज़िम्मेवारी स्वयं उठाएं। चूंकि हिंसा का स्वभाव यौनिक होता है लिहाज़ा इज़्ज़त और पवित्रता का मुद्दा सर्वोपरि बन जाता है। जायज़ कारण पैदा करने का दायित्व औरतों को अपनी आवाजाही नियंत्रित करने तथा सार्वजनिक जगहों पर किसी विशेष प्रयोजन से मौजूद होने या कम से कम किसी खास वजह का उपक्रम करने को बाध्य कर देता है। यानी औरतों के पास, बिना किसी उद्देश्य से, किसी सार्वजनिक जगह पर मौजूद होने या "ऐसे ही" घूमने-फिरने की आज़ादी नहीं होती। इसलिए हम अक्सर पुरुषों को पार्क में टहलते-बतियाते पाते हैं जबकि औरतें पार्क का उपयोग किसी खास मकसद के साथ ही करती हैं जैसे बच्चों को खिलाने, व्यायाम करने, बैठकर बातें करने के लिए। यह उपयोग प्रायः घर के नज़दीक स्थित पार्क या रिहाइशी कॉलोनी के पार्कों तक ही सीमित होता है। इंडिया गेट जैसी खास जगहों पर औरतें परिवार के साथ या समूहों में ही आती हैं। रात के समय अक्सर औरतें पार्कों में सुरक्षित महसूस नहीं करती हैं।

इन धारणाओं में यह पूर्वाग्रह भी निहित हैं कि औरतों की सही जगह घर के अंदर होती है और वे बाहर तभी जाती हैं जब वे ऐसा करना चाहती हैं। यह सोच उन सभी कामकाजी व मध्यमवर्गीय महिलाओं की सच्चाई को नज़रअंदाज़ करती है जिन्हें दिन भर सड़कों, बसों, पार्कों, स्कूलों, अस्पतालों और काम के स्थानों जैसी सार्वजनिक जगहों पर आना-जाना पड़ता है।

सुरक्षा का अभाव गरीब और कामकाजी महिलाओं पर अधिक प्रभाव डालता है क्योंकि इनको अक्सर स्कूल व काम पर जाने के लिए सुरक्षित यातायात के साधनों के अभाव में अपनी उत्तरजीविका व शैक्षिक अधिकार त्यागने पड़ते हैं। नई पुनर्वास बस्तियों में युवा लड़कियों के माता-पिता उन्हें स्कूल से निकाल लेते हैं क्योंकि बस से आते-जाते समय उन्हें यौन हिंसा का डर रहता है। डर के साथ-साथ इसका इन लड़कियों के जीवन पर भौतिक प्रभाव भी पड़ता है। दिल्ली विश्वविद्यालय की छात्राओं ने बताया कि वे अंधेरा होने के बाद सड़क पर निकलने से कतराती हैं क्योंकि सड़क पर

रोशनी काफी कम होती है और स्कूटर-कारों में सवार पुरुष उन्हें परेशान करते हैं। अगर पुस्तकालय शाम को देर तक खुले भी हों तो भी छात्राएं वहां कम ही दिखाई देती हैं। इन सभी का परोक्ष प्रभाव औरतों की शिक्षा, रोज़गार और शहरी जीवन में सम्पूर्ण भागीदारी पर पड़ता है।

इस विश्लेषण से यह साबित होता है कि यद्यपि आज के दौर में मीडिया और प्रचलित संस्कृति के प्रयासों के चलते यौनिकता को इच्छा के पैमाने पर पुनः आंका जा रहा है परन्तु "सम्मानीय यौनिकता के मापदण्ड" आज भी सतत् रूप से दोहराये जाते हैं। लिहाज़ा रात की पार्टी में शामिल औरतों को लेकर आम धारणा यह है कि वे आसानी से यौन संबंध बनाने के लिए तैयार हो जाती हैं और इसलिए ये औरतें हिंसा व बलात्कार के खतरे का अधिक सामना करती हैं।

यद्यपि शहर तक औरतों की पहुंच में पितृसत्ता की भूमिका महत्वपूर्ण है पर हमारे शोध से यह भी पता चला है कि शहर की योजनाएं व डिज़ाइन औरतों के सुरक्षा अनुभवों पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं। उदाहरण के लिए, किसी जगह का विविध कामों के लिए उपयोग उसे सुरक्षित बनाने में मददगार साबित होता है। योजनाशास्त्री व समाजशास्त्री इस बात का दावा करते हैं कि ऐसी जगहों का इस्तेमाल दिन भर होता है व यहां अलग-अलग तरह के लोगों की मौजूदगी होती है।

अपनी जांच के दौरान हमने यह भी पाया कि उन जगहों पर जहां लोग घूमते-फिरते नज़र आते हैं, सुरक्षा का आभास किसी सुनसान जगह से अधिक होता है। मध्यमवर्गीय रिहाइशी कालोनियों में औरतें उन पार्कों व कालोनी के अंदर की सड़कों का अधिकतर इस्तेमाल करती हैं जहां पर रोशनी ज़्यादा होती है। इसके अतिरिक्त दिन ढलने के बाद औरतों को सब्ज़ी व रोज़ाना की ज़रूरत का समान बेचने वाले खोखे, प्रेस की दुकानों आदि की मौजूदगी सुरक्षा का एहसास कराती हैं। उन्हें आसपास की दुकानों, बाज़ार, हाटों में भी रात के समय जाना सुरक्षित लगता है क्योंकि वहां बड़ी संख्या में लोग मौजूद होते हैं। पैदल पारपथों का उपयोग औरतें तभी करती हैं जब वहां सामान बेचने वाली दुकानें, खोखे और अच्छी रोशनी होती है।

किसी भी जगह को सुरक्षित बनाने में उपयुक्त रोशनी एक महत्वपूर्ण कारण होता है इसलिए अच्छी रोशनी वाले बाग-बगीचों में औरतें अधिक जाती हैं। ठीक इसी तरह रिहाइशी इलाकों में स्ट्रीट लाईट व तेज़ रोशनी औरतों की सुरक्षा का अहम कारण है। शहर की जगहों में दिन और रात में समय बड़ा फ़र्क़ होता है। अपनी शोध के दौरान हमने जांच दिन ढलने से पहले शुरू की और रात होने तक जारी रखी जिससे जगहों के बीच फ़र्क़ को समझा जा सके। हमने पाया कि शहर की अलग-अलग जगहों पर रोशनी की व्यवस्था के बीच अंतर है। लिहाज़ा बस स्टॉप से घर वापस आना रात के समय असुरक्षित हो जाता है। मध्यमवर्गीय व उच्चवर्गीय इलाकों में रोशनी की व्यवस्था बेहतर पाई गई। उदाहरण के लिए मायापुरी औद्योगिक क्षेत्र की फैक्ट्रियों के बाहर बिल्कुल अंधेरा था और वहां काम करने वाली औरतें घर जाने के लिए निकलते समय एक दूसरे का इंतज़ार करती थीं। वहां बस स्टॉप पर कोई रोशनी नहीं थी। काम चलाने के लिए सड़क की लाईट या ठेलों की गैस बत्ती मौजूद थी।

दिल्ली के शहरीकरण के लिए गरीब-कामकाजी वर्ग को शहर से योजनाबद्ध तरीकों से हटाया जा रहा है जैसे फैक्ट्रियों को बंद करके, बस्तियां तोड़कर, शहर के बाहरी क्षेत्रों में पुनर्वास करके। दिल्ली शहर के गरीब झुग्गी-झोपड़ी, बस्तियों, अवैध इलाकों में रहते हैं जहां ढांचागत भौतिक सुविधाएं नगण्य होती हैं। यहां पर असुरक्षा के कारणों में खराब रोशनी व्यवस्था, सार्वजनिक शौचालय के बदतर हालात, यातायात के खराब साधन आदि भी शामिल हैं।

खलता है

बाज़ार, सिनेमाघरों, पार्क व व्यवसायिक केंद्रों में महिलाओं के लिए सार्वजनिक शौचालयों का अभाव इन इलाकों तक औरतों की पहुंच को सीमित कर देता है। दिल्ली में महिलाओं के सार्वजनिक शौचालयों की संख्या बहुत कम है। पुनर्वास क्षेत्रों में रहने वाली औरतों के पास अपने निजी शौचालय नहीं हैं और उन्हें पैसे देकर सार्वजनिक शौचालय या खुले मैदानों का उपयोग करना पड़ता है। औरतें आर्थिक व देखभाल संबंधी कारणों से खुले खेतों में जाना पसंद करती हैं। इन इलाकों में रहने वाली औरतों ने खेतों में पुरुषों द्वारा छेड़खानी, उत्पीड़न, घूरने, यौन अंगों के प्रदर्शन के अनेक किस्से हमें सुनाए हैं।

चुभता है

यह स्पष्ट है कि रोशनी, पारपथ, सड़कों की हालत, पार्क, पेड़ों आदि की औरतों के लिए किसी जगह को सुरक्षित या असुरक्षित बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इसी तरह किसी भी जगह के उपयोग का तरीका उसकी सुरक्षा में अहमियत रखता है जैसे शराब की दुकानें जहां बड़ी संख्या में पुरुष जमा रहते हैं औरतों के लिए असुरक्षित और गैर आरामदायक होती हैं। दूसरी ओर जानी पहचानी दुकानें और दुकानदार उस जगह के प्रति औरतों के मन में सुरक्षा की भावना पैदा कर देते हैं। हमारा कहने का यह मतलब नहीं है कि सिर्फ़ यही कारण सुरक्षा की गारंटी हैं बल्कि यह कि ये सुरक्षा के महत्वपूर्ण कारक हैं जिन पर गौर किया जाना चाहिए।

कौन से कारण किसी जगह को सुरक्षित या असुरक्षित बनाते हैं जैसे सवालों पर चर्चाएं अक्सर मध्यम व उच्चवर्गीय महिलाओं के इर्द-गिर्द केंद्रित हो जाती हैं क्योंकि ये वर्ग भौगोलिक शहरों और अर्थव्यवस्था में भागीदार हैं। इसलिए बी.पी.ओ. में कार्यरत महिला के ऊपर हिंसा होने पर जनता में तीव्र प्रतिक्रियाएं होती हैं पर उन औरतों के प्रति लोगों की कोई दिलचस्पी नहीं होती जो देर रात काम से लौटती हैं और जिनके मालिक उन्हें कोई सुरक्षा सुविधा मुहैय्या नहीं कराते। इनमें नर्स, घरेलू कामगार तथा अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत कामकाजी महिलाएं शामिल हैं। ठीक इसी तरह मध्यमवर्गीय रिहाइशी इलाकों की सुरक्षा भी पूर्णतः वर्ग आधारित है। इसलिए काफी मध्यमवर्गीय क्षेत्रों के सुरक्षा नियमों के तहत 'निम्न वर्ग पुरुष' समान बेचने वालों को भीतर आने की मनाही है, पर यही लोग इन इलाकों में काम करने वाली घरेलू कामगार महिलाओं की सुरक्षा के प्रति बिल्कुल बेज़ार होते हैं।

अंत में हम यह कहना चाहेंगे कि सुरक्षा का विमर्श अधिकारों के व्यापक ढांचे के बीच स्थापित किया जाना चाहिए। सुरक्षा का अभाव औरतों को शहरी जीवन में खुलकर भाग लेने से वंचित करता है इसलिए सुरक्षा मुहय्या कराना व इस समस्या का समाधान भी अधिकारों के दायरे के भीतर किया जाना चाहिए। औरतों को अपनी असुरक्षा का निदान तलाशने के लिए नहीं कहा जा सकता। पैपर-स्प्रे या आत्म सुरक्षा कोर्स जैसे समाधान सुरक्षा को अधिकार के रूप में नहीं देखते। इस समस्या का समाधान राज्य व समुदाय से ही निकलना चाहिए। इसके लिए एक विचार-विमर्श प्रक्रिया जिसमें जनसंख्या के सभी गरीब, कमज़ोर तबके शामिल हों, के विचारों की सुनवाई तथा उनके पक्षों को मान्यता प्रदान की जानी चाहिए। तभी औरतों का शहरी नागरिक होने का सम्पूर्ण अधिकार मिल सकता है।

कल्पना विश्वनाथ व सुरभि टंडन मेहरोत्रा

यह लेख सेमिनार अंक 583 मार्च 2008 में पूर्व प्रकाशित किया जा चुका है।
मूल लेख अंग्रेज़ी में 'सेफ़ इन द सिटी' शीर्षक से है।